E-ISSN: 3048-6041| www.shodhpatra.org | Volume 1, Issue 8, August 2024

पर्यावरण, विकास एवं अंतरराष्ट्रीय सिद्धांतों की वर्तमान स्थिति

डा० अजय कुमार
पीएचडी - राजनीतिक विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क - ajksingh13@gmail.com

सारांश (Abstract)

विकास और पर्यावरण, वर्तमान समय में दोनों ही महत्व के विषय हैं। जहां पर्यावरण हमारा आधारभूत और मूल तत्व है, वहीं विकास आधुनिकता, गति, प्रगति, सीमित संसाधनों का उपयुक्तता से प्रयोग आदि से संबंधित माना जाता है। मोहनदास कर्मचंद गांधी कहते थे कि इन्हीं साधनों का सही तरीके से प्रयोग करना होगा। [1]

समय के साथ हमें विकास तो करना ही है साथ ही पर्यावरण को वर्तमान पीढियों के लिए ही नहीं भविष्य की पीढियों के लिए भी बनाए और बचाए रखना है। यह लेख इसी विकास और पर्यावरण के बीच दोहन, संतुलन-असंतुलन, सामनता-असमानता के बीच के वाद पर चर्चा करता है। साथ ही, क्योंकि पर्यावरण एक अंतर्राष्ट्रीय विषय है, सबको प्रभावित करता है अतः इस समस्या का समाधान इस लेख में सिद्धांतो के माध्यम से समाधित करने का भी प्रयास किया गया है, जैसे यथार्थवादी सिद्धांत, नव-यथार्थवादी सिद्धांत, उदारवादी सिद्धांत, नव-उदारवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत, पर्यावरण सिद्धांत इसके कुछ उदाहरण हैं।

यह सिद्धांत भले ही कितने भी पुराने हों परंतु आज भी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान इन सिद्धांतों के माध्यम से निकालने का प्रयास किया जाता है, लेख इन सिद्धांतो की चर्चा पर आधारित हैं।

मुख्य शब्द (Keywords) - पर्यावरण, विकास, सिद्धांत, जनसंख्या, प्रकृति दोहन, विकास संतुलन

परिचय (Introduction)

पर्यावरण, जो 19वीं शताब्दी तक कोई चिंता का विषय नहीं था, एक मुद्दा बनकर वैश्विक परिवेश में उभरकर सामने आया है। आज प्रत्येक देश विकास की होड़ में लगा हुआ है लेकिन वर्तमान

[1] Pantham. Deutsch(1986). 'Political thought in modern India.

E-ISSN: 3048-6041| www.shodhpatra.org | Volume 1, Issue 8, August 2024

परिदृश्य कुछ इस प्रकार का है कि यदि आप विकास की बात करते हैं तो पर्यावरण विरोधी माने जाते हैं, और पर्यावरण की बात करते हो तो विकास विरोधी। इसके साथ-साथ एक नए तरीके का भी प्रश्न उठता है जैसे 'पुनः विकास', और यही वह बिंदु है जिस पर विश्व के दोनों समूह (उत्तर-दक्षिण) एक दूसरे के सामने आकर खड़े हो जाते हैं।

समकालीन अंतरराष्ट्रीय परिवेश में 'पर्यावरण' एक विचारणीय मुद्दा बनकर उभरा है जो लोगों के आज को तो नुकसान पहुँचा ही रहा है साथ ही यह उनके कल को नष्ट करने की भी पूर्ण क्षमता रखता है। आज पर्यावरणीय समस्याएँ जैसे जलवायु परिवर्तन, ओज़ोन परत का ह्रास, जैव-विविधता में कमी, ग्लेशियरों का पिघलना, समुद्र तल का ऊपर उठना, वैश्विक तापमान में वृद्धि आदि इसी के रूप हैं। यदि देखा जाए तो इन समस्याओं का कारण आज के मानव की दिनचर्या है जो 'विकास' के नाम पर या अपने विलासिता भरे जीवन को आगे बढ़ाने के नाम पर पर्यावरण विरोधी क्रियाएँ कर रहे हैं। हालाँकि आज पूरा विश्व प्रयासरत है कि किस प्रकार इन समस्याओं का निवारण किया जाये, इस प्रयास के समाधान के मार्ग में भी अनेक बाधाएँ हैं जिनमें से एक हैं 'पर्यावरण को लेकर विश्व का दो गुटों (‘उत्तर’ और ‘दक्षिण’- इन शब्दों का प्रथम प्रयोग 1980 में ब्रेड्थ कमीशन के द्वारा किया गया) में विभाजित होना। इसमें उत्तरी देश विकसित देश हैं जो अपनी मजबूत स्थिति के कारण अपनी ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ते रहते हैं, वहीं दक्षिणी देश विकासशील या अल्प-विकसित देश वह देश हैं जो अपनी मूलभूत जरूरतों जैसे राष्ट्र निर्माण, गरीबी, बेरोज़गारी, पिछड़ेपन की समस्याओं को पूरा करने के लिए इसी मार्ग पर चलने की दुहायी देते हैं और मजबूर भी हैं।

हाल के वर्षों में पर्यावरणीय विषय अधिक महत्वपूर्ण हो गए है, ठीक उसी प्रकार जैसे आर्थिक विकास, औद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि की समस्या है। पर्यावरणीय समस्याएँ तो सभी देशों में पाई जाती हैं परंतु वर्तमान समय में यह सभी देशों की चिंता का विषय भी बना है कारण इसकी प्रकृति वैश्विक हो गई है। भूमंडलीकरण के कारण अब राज्य, अंतर-राष्ट्रीय संगठन, बाज़ार सभी इस समस्या से जुड़ गए हैं, बहुत से विचारकों का यह कहना है कि अब पर्यावरण संबंधी विषयों के प्रति राज्य की भूमिका और सक्रियता का निर्धारण किया जाना चाहिए ताकि लोगों की भलाई हेतु कार्य किए जा सके। पर्यावरण की कोई एक निश्चित समस्या नहीं है बल्कि यहाँ बहुत सी समस्याएँ हैं जो अलग-अलग होकर भी आपस में मिल जाती हैं, हमें इनसे निज़ाद पाना है।

इन सभी चिंताओं में एक बात जो उभयनिष्ठ है वह है कि इन सभी समस्याओं का मूल कारण मानव ही है। पर्यावरणीय समस्याएँ विकसित-विकासशील सभी जगहों पर विद्यमान हैं किंतु

इनका प्रभाव, प्रहार आसमान रहा है, जिसकी व्याख्या और समझ अति-आवश्यक है। यहाँ पर 'उत्तर' 'दक्षिण' में विभाजन किसी भौगोलिक सीमांकन की जगह आर्थिक, विकसित, औद्योगिक, तकनीकी, आधुनिकता, सैन्य क्षमता, राजनीतिक स्थिरता, सांस्कृतिक प्रभाव, सकल घरेलू उत्पाद, रोजगार, शिक्षा, जीवन-प्रत्याशा दर आदि आधारित है।

आज हम जिस पर्यावरणीय समाज में रह रहे हैं, **रामचंद्र गूहा (1999)** के अनुसार वहाँ तक पहुंचने में हमें तीन चरणों से गुजरना पड़ा है[2], जिसमें **प्रथम चरण** वह था, जब उत्तर के देशों ने अपना विकास करने के लिए औद्योगीकरण का मार्ग अपनाया, जिसमें उनके द्वारा काफी मात्रा में जंगलों को काटा और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया गया। **दूसरा चरण** वह रहा जब लोगों को पर्यावरण के नुकसान की समझ एवं एहसास होने लगा, विज्ञान की मदद और भिन्न शोधों के माध्यम से यह पता लगने लगा कि हम प्रकृति के एक अति महत्वपूर्ण हिस्से को खोते जा हैं, **अंतिम चरण** में लोगों की प्रतिक्रियाएँ आने लगीं एवं उनके द्वारा जन आंदोलन किए जाने लगे, इसके संरक्षण के लिए अनेक संगठन बनाए गए, जो सरकार को अपने कार्यों एवं नीतियों में पर्यावरण को भी जोड़ने को लेकर दबाव बनाने लगे, यह चरण आज भी बना हुआ है।

शोध पद्धति (Research Methodology)

लेख में ऐतिहासिक, सैद्धांतिक, तुलनात्मक, वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। द्वितीय स्रोत पर आधारित यह लेख, जिसमें रामचंद्र गुहा, महेश रंगराजन, गुस्तावो एस्टेवा, स्कॉट वर्चिल जैसे सिद्धांतकारों के प्राथमिक एवं वैश्विक स्वीकृत शोध का इस्तेमाल किया गया है।

विकास और पर्यावरण

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में प्रत्येक देश को उसकी 'विकास दर' से पहचाना जाता है। विकास, जिसे आमतौर पर एक पूंजीवादी, औद्योगिक व्यवस्था, विलासिता, अंध-दौड़ के साथ जोड़कर देखा जाता है,15वी -18वी शताब्दी में आया। आरंभ में इसे मात्र आर्थिक विकास के रूप में समझा जाता था, धीरे-धीरे इसकी समझ और व्याख्या में विस्तार हुआ है। [3] इस पूरी प्रक्रिया में उत्तरी देश समृद्ध और दक्षिणी देशों निर्भर और शोषित होते जा रहे थे(नव- उपनिवेशवाद)। इस पूरी प्रक्रिया को **जोनाथन क्रश (Jonathan Crush)** अपनी पुस्तक **'पावर ऑफ डेवलपमेंट'** में संदिग्धता से देखते हैं और यह

[2] Guha. Environmentalism: A Global History.
[3] Ibid.

बताते हैं कि इस *'विकास में कुछ तो छुपा हुआ हैं जो कुछ देशों को तो संपन्न कर रहा है और कुछ देशों को कुछ नहीं।*[4] जिस प्रकार यह विकास मात्र समृद्धता तक सीमित रह गया है[5] एवं कुछ सीमित विकसित उत्तरी देशों का ही विकास कर रहा है, गरीब देशों के लिए यह मात्र मज़ाक बन कर रह गया है। **गुस्तावो एसतेवा** मैक्सिको का उदाहरण देकर बताते हैं कि यहाँ विकास भायावय बदबूदार दशकों के रूप में ही रहा है, जो समाज के स्तर को गिराता चला गया है, आज भी इस विकास की धारणा ने जिस प्रकार का विकास किया है वह दक्षिणी देशों को बस यह दिखाता है कि *'वह क्या नहीं हैं?*[6]

देखा जाए तो यह तथाकथित विकास, आधुनिकता के नाम पर आया, और इस पूरे प्रक्रम में 'आधुनिकता' ही एक बड़ा प्रश्न बनकर रह गया। हम सभी ने अपनी क्रियाओं से प्रकृति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, परंतु पिछली कुछ शताब्दियों में इसके ह्रास में 10 गुणा तक का इज़ाफा हुआ है। जोन मेकनेल (John Mecneill) कहते हैं कि हमारे पूर्वजों ने 1000 वर्षों में पर्यावरण को इतना नुकसान नहीं पहुँचाया जितना हम पिछले 100 वर्षों में पहुँचा चुके हैं।[7]

1980 के उत्तरार्ध तक पर्यावरण पर ज्यादा लेखन कार्य नहीं हुआ था, वर्तमान समय में पर्यावरण पर ध्यान भी **रच्हेल कार्सन (Rachel Carson)** की पुस्तक **'साइलेंट स्प्रिग'** से गया, जिसमें उन्होंने जीवों (चिड़िया- कार्सन द्वारा प्रदत्त उदाहरण) पर रसायन के इस्तेमाल के गलत प्रभावों का वर्णन किया है, साथ ही बताया कि किस प्रकार हमारी पर्यावरण विरोधी गतिविधियों और परमाणु संयंत्र से रेडियोधर्मिता के रूप में हम पर हमेशा खतरा बना रहता है।[8]

'उत्तर' में कुछ समय पूर्व से ही चिंतकों ने अपनी चिंताओं को रखना प्रारम्भ किया है। दक्षिणी देशों में लेखन कार्य शुरू हुआ तो इसमें पाया गया कि विविध मानकों में दक्षिणी देश उत्तरी देशों से इस प्रकार पीछे हैं मानो यहाँ अभी कुछ हुआ ही ना हो। यहाँ से और इस विकास की दौड़ को और तीव्र किए जाने का विचार सामने आया।

[4] Crush. Power of Development.
[5] Sen, Dreze(1995) India: Economic Development and Social Opportunity.
[6] Simon. Development Reconsider: New Directions in Development Thinking.
[7] गडगिल। भारत में पर्यावरण के मुद्दे-एक संकलन।
[8] Carson. Silent Spring.

यथार्थवादी संपूर्ण वैश्विक व्यवस्था को शक्ति के लिए संघर्ष बताते हैं जहाँ पर राज्य एक महत्वपूर्ण अभिनेता होता है।[9] इन परिस्थितियों में मात्र भौगोलिक, सैनिक शक्तियाँ ही होती हैं जो भिन्न राष्ट्रों के मध्य संबंधों का निर्धारण करती हैं, इस पूरे प्रकरण में प्रत्येक देश अपनी शक्ति के विस्तार में लिप्त रहते हैं। वह इसके विस्तार के मार्ग में पर्यावरण का दोहन भी करते हैं, यहां से पूरा विश्व भी शक्ति संतुलन के नाम पर इस मार्ग पर चलने लगता है, परिणाम स्वरूप पर्यावरण विध्वंस हमारे सामने है।

यथार्थवादी यह भी ज़ोर देते हैं कि भिन्न स्थितियों को पर्यावरणीय नज़रिए से भी समझना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और देश युद्ध को मात्र सैनिक हानि, माल हानि, जन हानि तथा अर्थव्यवस्था के नज़रिये से देखते हैं परंतु यह अति-आवश्यक है कि इन युद्ध त्रासदियों को पर्यावरणीय नज़रिए से भी देखना चाहिए। यह आँकना अति आवश्यक है कि पर्यावरण पर इन युद्धों, संघर्षों का क्या परिणाम पड़ रहा है। **नव-यथार्थवादी** संरचनात्मक तत्व को निर्धारक मानते हैं, जिसमें एक अराजक स्थिति में प्रत्येक देश अपनी शक्तियों को अधिकतम करने में तत्पर बना रहता हैं, और इसका एक तरीका प्राकृतिक संसाधन पर एकाधिकृत करने के यत्न से भी जुड़ा हुआ है। **पुरातन नव-परंपरावादी** इन सब पर्यावरणीय समस्याओं का कारण लोगों का पर्यावरण को 'मूल्य-विहीन' समझने से मानते हैं अर्थात लोगों का यह समझना कि पर्यावरण एक मूल्य-शून्य वस्तु है जिसका हम अपनी इच्छा के अनुसार जितना मर्जी जब मर्जी दोहन कर सकते हैं।

सुरक्षात्मक (Defensive) यथार्थवादी बताते हैं कि यह अराजकता की स्थिति है जो बड़ी शक्तियों को लाभ की स्थिति में रहने को प्रेरित करती हैं। वाल्टज् बताते हैं कि यह बड़ी वैश्विक शक्तियाँ इस संतुलन की स्थिति को बनाये रखने की जगह अपने आप को शक्तिशाली एवं सुरक्षित बनाये रखने पर ज्यादा ध्यान देती हैं। **आक्रामक (Offensive) यथार्थवाद** यह कहता है कि अंतरराष्ट्रीय संबंधों में हमेशा असमंजस की स्थिति बनी रहती है, इसी असमंजस की स्थिति के कारण प्रत्येक देश अपनी सैनिक शक्ति में विस्तार करता रहता हैं। **जॉन मियरसीमर** के अनुसार ये जो अराजकता और सैन्य शक्ति का संयोग है वह राज्य जैसे अभिनेताओं में असमंजस, भय एवं संदेह का माहौल उत्पन्न करते हैं। यह सभी पर्यावरण के प्रतिकूल है इन धारणाओं के वर्णन अनुसार प्रत्येक देश किसी भी प्रकार से अपनी शक्ति बढ़ाने, सुरक्षा और आक्रामकता के उपाय करने में लिप्त रहता

[9] Burchill. Theories of International Relations.

है, जिसमें वह कभी नहीं सोचता कि इससे पर्यावरण को क्या नुकसान पहुँच रहा है क्योंकि उनके लिए पर्यावरण का कोई मूल्य नहीं है, और वास्तव में यह बहुत बड़ी समस्या है।

यथार्थवादियों से परे **नव-उदारवादी** विचारक अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों को आशावादी नज़रिये से देखते है, वह बताते हैं कि यथार्थवादियों के वर्णन के अनुसार अंतर-राष्ट्रीय व्यवस्था अराजक तो वर्णित की जाती है परंतु इसमें यह नहीं देखा जाता कि इस संरचना के साथ-साथ संम्भावनायें भी हैं जिससे इन समस्याओं का समाधान निकाला जा सकता है। वे यथार्थवाद के इस विचार को नकारते हैं कि राज्यों के मध्य युद्ध अपरिहार्य है, साथ ही उनका विश्वास है कि मानव की दूसरों के प्रति निर्भरता ने मानव को एक दूसरे के साथ सहयोग करने को मजबूर कर दिया है, जिस स्थिति में संघर्ष के लिए कहीं जगह ही नहीं बच पाती।

उदारवादी विचारक बताते हैं कि इस पूरी प्रक्रिया में लोकतंत्र का बड़ा योगदान रहता है क्योंकि लोकतंत्र में भिन्न क्रियान्वयन, नीति निर्माण, प्रक्रियागत एवं सुचारु रूप से होता है, इन नीतियों पर एक व्यवस्थित बहस होती है जो इसके दूरगामी प्रभावों का आकलन करने में काफ़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विचारक यह विचार रखते हैं कि पर्यावरण के मामले में भी लोकतंत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा पाएगा, यहाँ लोकतंत्र के माध्यम से उदारवादी विचारकों ने एक समाधान प्रस्तावित किया है जो व्यावहारिकता में कई जगहों पर क्रियान्वित भी किया गया है।

मार्क्सवादी सिद्धातकार बताते हैं कि इस पूरी पूंजीवादी/बाज़ारोन्मुखी प्रक्रिया के ज़रिये पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया जा रहा हैं, वे बताते हैं कि आज के जमाने का श्रमिक वर्ग मार्क्सवादी विचारधारा से ज्यादा परिचित नहीं हैं और इसी का लाभ उठाकर पूंजीवादी पर्यावरण ह्रास में आसानी से इनका इस्तेमाल कर पाते हैं। मार्क्सवादियों के अनुसार पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली तकनीक और औद्योगीकरण पूंजीवाद की ही देन है।

पारिस्थितिकीय उपागमवादी इसकी 'निजी' और 'सार्वजनिक' कीमत में अंतर करते हुए बताते हैं कि भले ही विकास, आधुनिकता, तकनीकी चीज़ों को बनाने की निजी कीमत कम लगती हो परंतु इसके कुप्रभाव और विनाश की 'सार्वजनिक कीमत' काफी ज्यादा हैं। इसका एक उदाहरण हैं न्यूक्लियर परमाणु बम्ब, जो कम कीमत का होने के पश्चात अपने एक ही इस्तेमाल से विश्व की बड़ी जनसंख्या को तबाह करने की क्षमता रखता हैं, जापान में हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु इस्तेमाल के बाद कई दशकों तक वहाँ कि जनता पर इसका प्रभाव देखा जा सकता था।

1971 में पोल एहरिच ने एक समीकरण I=P∗A∗T दिया, जिसमें I=पर्यावरण, P=जनसंख्या, A=उपभोग, T=तकनीकी को दर्शाता हैं, इसमें एहरिच ने पर्यावरणीय समस्याओं का मुख्य कारण जनसंख्या को बताया हैं। **अरिजपे (Arizpe)** ने अपनी पुस्तक **'पोपुलेशन एंड ऐनवायरनमेंट- रीथींकिँग डिबेट'** में बताया है कि 'जितनी ज्यादा जनसंख्या होगी, उतने ज्यादा दिमाग होंगे, उतनी ही ज्यादा तकनीकी और उतनी ही ज्यादा समस्याएँ होगी, कहने का अर्थ है कि जनसंख्या का बढ़ना उपभोग व पर्यावरण समस्या को भी साथ में लेकर चलता है।

निष्कर्षतः

हमें समझने कि जरूरत है कि सभी समस्याएँ मानव के द्वारा जनित नहीं होती, प्राकृतिक आपदाएँ भी पर्यावरण को नुकसान पहुँचाती हैं, परंतु अभी तक के पर्यावरण के नुकसान के परिणामों को देखते हुए यह तो बताया ही जा सकता है कि पर्यावरण से हुआ नुकसान ज़्यादा नुकसानदेह नहीं रहा, ख़ासकर अब जब मानव के पास परमाणु बम्ब, रसायनिक हथियार, जैविक हथियार(2020 में आया कोरोना वाइरस) आदि आ गये हैं, तो 'मानव ही दानव' प्रतीत होता है। हो सकता है कि प्रकृति इससे भी ज़्यादा क्षमता रखती हो परंतु अभी सबसे ज़्यादा नुकसानदेह मानव ही प्रतीत हुआ है, अभी तक मानव ही पर्यावरण को क्षति पहुंचाने का दिखावा या नुकसान पहुँचाता रहा है।

उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा, जो आधुनिकता और औद्योगीकरण की आलोचना से उभरी है वह 'विकास' धारणा को ही अस्वीकार करती है और बताती है कि चीज़ों में कमी तब आती है जब विकास के नाम पर ह्रास और एकत्रीकरण किया जाता है। इस प्रकार का विचार गांधी के द्वारा भी दिया गया था, गाँधी ने कहा था कि हमारी प्रकृति में इतने संसाधन मौजूद हैं कि जिससे हम अपना भरण-पोषण तो कर सकें परंतु इतने नहीं की हम सब अपनी विलासिताओं को पूरा कर पाएँ। इसी प्रकार **सेच्स** ने इस प्रकार के विकास को **'तिथिओत्तर' (Outdated)** बताया है, जिसका अब कोई औचित्य नहीं रह गया है क्योंकि इसकी कथनी और करनी में काफ़ी अंतर का चुका है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नायर. उषा(2019), "पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकर", नई दिल्ली- वाणी प्रकाशन
2. खत्री.हरीश कुमार(2013), "जैव-विविधता", नई दिल्ली- आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्युटर्स
3. Esteva. Gustavo (1994), "The Development Dictionary-A Guide to Knowledge as Power", Londan- Zed books.

4. गड्गिल, माधव, गुहा.रामचन्द्र(2018), "यह दरकती ज़मीन- भारत का पारिस्थितिक इतिहास", नई दिल्ली- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. रंगराजन.महेश(2010), "भारत में पर्यावरण के मुद्दे-एक संकलन", नई दिल्ली- पियर्सन।
6. Morgenthau, Hans J. (2006), "Politics Among Nations- The Struggle For Power And Peace", Michigan-Alfred A. Knopf.
7. Jakobsen. Susane (1994), "International Relations and Global Environment Change" in Cooperation And Conflict, vol. 34(2).
8. शिमरे.चोंग(2018), "पर्यावरण शिक्षण-भारत में रुझान एवं प्रयोग", यूनाइटेड किंग्डम- सेज प्रकाशन.
9. शर्मा.दामोदर(2009), "आधुनिक जीवन व पर्यावरण" नई दिल्ली- प्रभात प्रकाशन.
10. त्रिपाठी.दया शंकर(2009), "पर्यावरण अध्ययन", मुंबई- लेखाधीन.
11. Dasgupta. Biplab (1978), "The Environmental Debate-Some Issue and Trends" in Economic Political Weekly, Vol. 13(6-7).
12. Guha, Ramchandra(1999). Environmentalism: A Global History.
13. Crush, Jonathan(1995). "Power of Development".
14. Simon. David (1997), "Development Reconsider: New Directions in Development Thinking" in 'Geografiska annaler', Vol-79(4).
15. Carson, Rachel(1962). Silent Spring.
16. Burchill, Scott(1996). Theories of International Relations.
17. Pantham, Thomas. Deutsch, Kenneth L(1986). 'Political thought in modern India'. Sage Publications.
18. Sen, Amartya. Dreze, Jean(1995) India: Economic Development and Social Opportunity. Clarendon Press.